स्वास्थ्य संवर्धन में श्रीमद्भगवद्गीता वर्णित आहार और निष्काम कर्म योग की भूमिका

साधना देवराही* मनन जी प्रदीप कुमार मिश्रा *****

सारांश : वर्तमान समय में मनुष्य वैचारिक स्तर पर निकृष्टता की ओर जा रहा है, वैचारिक निकृष्टता से तात्पर्य विचारों की अस्थिरता, निम्न श्रेणी के विचार जिसके कारण लोभ, मोह, क्रोध आदि उत्पन्न होते हैं, और इन मनोविकार के कारण अनेक मानसिक बीमारी चिन्ता, अनिद्रा, तनाव जैसे विकार उत्पन्न होते हैं। मानसिक विकार उत्पन्न होने के कारण धीरे-धीरे व्यक्ति प्राणों के स्तर पर क्षीण होता जाता है। प्राणों के स्तर पर अनियन्त्रण होने से शारीरिक रोग उत्पन्न होने लग जाते हैं। प्राण अर्थात् 'जीवनी शक्ति' प्राण के बिना जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है। इसलिए रोग मुक्त होने के लिए प्राण का संतुलितहोना आवश्यक है।

हमारा शरीर पाँच कोशों से बना है इसलिए प्रत्येक कोश की शुद्धता आवश्यक है, किसी एक भी कोश में विकार होने से विकार रहित स्थिति 'आनन्दमय कोश' को प्राप्त नहीं किया जा सकता है और इस कोश को विकार युक्त बनाने में नकारात्मक विचार, मानसिक अस्थिरता, गलत आहार सेवन आदि की अहम भूमिका है क्योंकि विचारों का सम्बन्ध मनोमय कोश से है। विचार जैसे ही असंतुलित होते हैं, मनोमय कोश में विकार उत्पन्न होने लगते हैं, और मनोमय कोश विकृत्त होने से प्राणमय कोश, अन्नमय कोश और विज्ञानमय कोश में विकृति आने लगती है जिसके कारण अनेकों शारीरिक और मानसिक विकार उत्पन्न होने लगते हैं। इसलिए वैचारिक स्तर पर सुदृढ़ता अति आवश्यक है। इस सुदृढ़ता के लिए निष्काम कर्मयोग और आहार की अहम भूमिका है क्योंकि जब व्यक्ति निष्कामी होता है तो वह कर्म फल के प्रति आसक्त नहीं होता है जिसके कारण वैचारिक स्थिरता बनी रहती है और सात्विक आहार के सेवन से अन्नमय कोश शुद्ध हो जाते हैं, और शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है । अतएव इस प्रकार से व्यक्ति यदि श्रीमद्भगवतगीता वर्णित निष्काम कर्म योग और आहार की अवधारणा को मननशील, विचारशील होकर अपने जीवन में धारण करे तो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है।

शब्द कुंजी – मनोविकार, जीवनी शक्ति, पंचकोश, निष्काम कर्मयोग, आहार।

प्रस्तावना –

स्वास्थ्य की परिभाषा:

"समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थइत्यभिधीयते॥"

अर्थात् जिसके वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष समान हों, जठराग्नि सम हो, सप्त धातुएँ सम हो, मल विसर्जन की क्रिया ठीक हो तथा जिसका मन, इन्द्रियाँ एवं आत्मा सदा प्रसन्नचित्त रहते हो, वह व्यक्ति स्वस्थ माना जाता है।[1]

"हितमिहायुसंमितंशरीरस्योक्तमत्यया।
यस्योपदिष्टमिच्छन्ति जीवनं रक्षितुं स्मितम्॥"

* शोध छात्रा, वेद विभाग गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार

** सहायक प्रोफ़ेसर, श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला विश्वविद्यालय झुंझुनू राजस्थान,
ईमेल- mananjee1993@gmail.com, मो.नं.- 7060435340

** शोध छात्र, संज्ञाहरण विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, का.हि.वि.वि., वाराणसी।

सुश्रुत संहिता शरीर और जीवन के संरक्षण पर बल देती है। यहाँ पर यह कहा गया है कि शरीर की देखभाल और जीवन के पालन के लिए उचित आहार, जीवनशैली, और चिकित्सा पद्धतियों को अपनाना चाहिए। यह श्लोक यह स्पष्ट करता है कि शरीर की रक्षा और स्वास्थ्य का संरक्षण जीवन के उद्देश्य के रूप में आवश्यक है।[2]

"शरीरेन्द्रिय सत्त्वात्म संयोगो धारि जीवितम्।

नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥"

अर्थात् शरीर (पंचमहाभूत), इन्द्रिय (5 ज्ञानेन्द्रियाँ + 5 कर्मेन्द्रियाँ), सत्त्व (मन), अर्थात् जब ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय के साथ संयुक्त होता है तभी किसी इन्द्रिय के द्वारा किया गया कार्य उचित ढंग से सम्पादित होता है और शरीर, मन, इन्द्रिय, आत्मा जहां इन चारों का संयोग होता है उसे आयु कहा जाता है।[3]

सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥

अर्थात् आरोग्यता ही सुख है। बिना आरोग्यता के संसार के सभी सुखों (पुरुषार्थ चतुष्टय) का भोग संभव नहीं है।[4] पुरुषार्थ चतुष्टय (1) धर्म (2) अर्थ, (3) काम, (4) मोक्ष।

W.H.O के अनुसार व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से वही स्वस्थ है जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर स्वस्थ है।

1. **शारीरिक स्वास्थ्य**- जब शरीर के सभी तन्त्र सुचारू रूप से कार्य कर रहे है, शरीर में किसी भी प्रकार की व्याधि न हो, हॉर्मोन्स आदि सन्तुलित हो तो आप शारीरिक स्तर पर स्वस्थ हो।
2. **मानसिक स्वास्थ्य**- विचारों के स्तर पर नियन्त्रण, काम, क्रोध, लोभ, मोह का अभाव ही मानसिक स्वास्थ्य है।
3. **सामाजिक स्वास्थ्य**- सामाजिक एकीकरण, सामाजिक योगदान, सामाजिक सामञ्जस्य, सामाजिक वास्तविकता और सामाजिक स्वीकृति इन सभी स्तरों पर सहज रहना ही सामाजिक स्वास्थ्य है।
4. **आध्यात्मिक स्वास्थ्य**- शारीरिक और मानसिक स्तर पर सुदृढ़ रहते हुए नैतिक और चारित्रिक स्तर पर उत्कृष्टता को प्राप्त करना ही आध्यात्मिक स्वास्थ्य है।

श्रीमद्भगवतगीता में आहार के विषय में विस्तृत चर्चा की गयी है –

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

अर्थात् दुःखों का नाश करने वाला योग यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का यथायोग्य सोने और जागने वाले का ही सिद्ध होता है।[5]

गीता में आहार के विषय में कहा गया है –

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।

अर्थात् प्रकृति के भिन्न-भिन्न गुणों के अनुसार तीन प्रकार का होता है।[6]

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

अर्थात् जो भोजन सात्त्विक व्यक्तियों को प्रिय होता है, वह आयु बढ़ाने वाला, जीवन को शुद्ध करने वाला तथा

बल, स्वास्थ्य, सुख तथा तृप्ति प्रदान करने वाला होता है। ऐसा भोजन रसमय, स्निग्ध, स्वास्थ्यप्रद तथा हृदय को भाने वाला होता है।[7]

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥

अर्थात् अत्यधिक तिक्त, खट्टे, नमकीन, गरम, चटपटे, रुखे तथा जलन उत्पन्न करने वाले भोजन रजोगुणी व्यक्तियों को प्रिय होते है। ऐसे भोजन दुःख, शोक तथा रोगो को उत्पन्न करने वाले है।[8]

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

अर्थात जो भोजन सड़ा हुआ, रसरहित, दुर्गन्धित, बासी और जूठा है तथा जो महान् अपवित्र(मांस आदि) भी है,वह तामस मनुष्य को प्रिय होता है। इन सभी आहारों में स्वास्थ्य संवर्धन हेतु सात्त्विक आहार ही उपयुक्त है।[9]

व्याधिक्षमत्व बढ़ाने एवं स्वास्थ्य संवर्धन में आहार की भूमिका :हमारे शास्त्रों में आहार की महत्ता पर विशेष बल दिया गया है। आहार का सीधा सम्बन्ध हमारे अन्नमय कोश और मनोमय कोश है। शास्त्रों में कहा गया है कि जैसा खायें अन्न वैसा बने मन इसलिए दोनों कोशों की शुद्धि हेतु सात्त्विक आहार का सेवन आवश्यक है।

- आहार का सेवन शरीर में ताजगी और ऊर्जा का संचार करता है, जिससे शरीर की रोग प्रतिकारक क्षमता में सुधार होता है। सही आहार से शरीर को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं, जो इम्यून सिस्टम को मजबूत बनाते हैं और रोगों से लड़ने की शक्ति बढ़ाते हैं।
- आयुर्वेद में यह माना जाता है कि आहार के सही प्रकार से सेवन से शरीर में) "धातु"tissues) का पोषण होता है, और) "अग्नि"digestive fire) ठीक रहती है, जिससे समग्र स्वास्थ्य में सुधार होता है।
- आयुर्वेद में शरीर को तीन मुख्य दोषों — **वात**, **पित्त** और **कफ** द्वारा नियंत्रित किया जाता है। आहार इन दोषों को संतुलित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- अगर आहार दोषों के अनुसार नहीं होता, तो यह दोष असंतुलित हो जाते हैं और स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरण स्वरूप, अधिक तला-भुना या गर्म आहार पित्त को बढ़ा सकता है, जबकि अधिक ठंडा आहार कफ दोष को बढ़ा सकता है।
- संतुलित आहार इन दोषों के संतुलन को बनाए रखने में मदद करता है, जिससे शरीर का आत्मरक्षा तंत्र (immune system) मजबूत होता है।
- सही आहार शरीर को आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है, जिससे शरीर की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। यह शरीर की रोग प्रतिकारक क्षमता को मजबूत करता है, जिससे व्यक्ति जल्दी बीमार नहीं पड़ता।
- आहार में फल, सब्जियाँ, प्रोटीन, और आवश्यक विटामिन्स और मिनरल्स का संतुलित सेवन शरीर की सभी प्रणाली को सही ढंग से कार्य करने में मदद करता है।
- आहार केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद में यह माना जाता है कि आहार का प्रभाव हमारी मानसिक स्थिति पर भी पड़ता है।

- ताजे, पौष्टिक और शुद्ध आहार से मन में शांति और संतुलन रहता है, जबकि अधिक मसालेदार या भारी आहार मानसिक तनाव और अशांति का कारण बन सकते हैं।
- अग्नि (digestive fire) को मजबूत करने के लिए आहार का सेवन महत्वपूर्ण होता है। सही प्रकार से पचने वाला आहार शरीर में सशक्तता और ताजगी लाता है, जबकि अपच और अव्यवस्थित आहार शरीर को कमजोर कर देता है और बीमारी की संभावना बढ़ा सकता है।
- आयुर्वेद में यह कहा गया है कि आहार का सेवन हमेशा ताजे और शुद्ध रूप में करना चाहिए, ताकि यह सही तरीके से पच सके और शरीर में समग्र स्वास्थ्य का संचार हो सके।[10]

स्वास्थ्य संवर्धन में निष्काम कर्मयोग की भूमिका –

निष्काम कर्मयोग से तात्पर्य अनासक्त भाव से किया गया कर्म, जो सुख-दुःख, शीत-उष्ण, जय-पराजय, यश-अपयश आदि से परे अपने कर्तव्य कर्म में लीन रहता है वही वास्तविक निष्काम कर्मयोगी है। परमात्मा स्वयं सृष्टि का संचालक होते हुए भी हमें बुद्धि देकर कर्मों का अधिष्ठाता बनाया है, हम सत्कर्म का मार्ग अपनाकर आत्मिक प्रगति की ओर बढ़ सकते हैं, लेकिन कर्म हमेशा अनासक्त भाव से हो एवं पारमार्थिक दृष्टिकोण से हो यह हमेशा चिन्तन में बने रहना चाहिए।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि" ।।

अर्थात् तुम्हें अपना कर्म (कर्त्तव्य) करने का अधिकार है, किन्तु कर्म के फलों के तुम अधिकारी नहीं हो। तुम न तो कभी अपने आपको अपने कर्मों के फलों का कारण मानों, न ही कर्म न करने में कभी आसक्त हो।[11]

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।

अर्थात् तुम सुख या दुःख, हानि या लाभ, विजय या पराजय का विचार किये बिना युद्ध कर ऐसा करने पर तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा।

जब व्यक्ति सुख दुःख, हानि या लाभ, विजय या पराजय इन सबसे परे होकर कर्म को करता है तो स्वाभाविक रूप से कर्मों के परिणाम से उत्पन्न होने वाले सुख पीड़ा से मुक्त हो जाता है जिसके कारण मस्तिष्क पर उत्पन्न होने वाले अनावश्यक तनाव से मुक्त होकर आनन्द की स्थिति में स्थित रहते हैं। जिसके फलस्वरूप शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की विशेष हानि नहीं होती।[12]

"बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥"

अर्थात् हे! पार्थ यदि इस प्रकार बुद्धि से युक्त होकर निष्कामी होकर कर्म करोगे तो तुम कर्म बन्धन से मुक्त हो सकते हो।[13]

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

अर्थात् निष्काम कर्मयोग के मार्ग में न तो हानि होती है न ही ह्रास अपितु इस पथ पर की गई अल्प प्रगति भी महान् भय कर्म बन्धन से रक्षा कर सकती है।

जब मनुष्य फलेच्छा से विहीन होकर अनुष्ठान करता है तो समता के भाव दृढ होते जाते हैं. इसके विपरीत जब वह राग, द्वेष आदि से युक्त होकर कर्मों का अनुष्ठान करते हैं तो विषमता, इसी विषमता से जन्म-मरण रूप बन्धन होता है।" समता की महिमा भगवान् ने चार प्रकार से की है –

1. कर्मबन्धं प्रहास्यसि - समता के द्वारा मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है।
2. नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति - इसके (समता) आरम्भ का भी नाश नहीं होता।
3. प्रत्यवायो न विद्यते- इसके अनुष्ठान का उल्टा फल भी नहीं होता।
4. 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् इसका थोड़ा सा भी अनुष्ठान जन्म-मरण रूप महान् भय से रक्षा कर लेता है।[14]

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोव्यवसायिनाम् ।।

अर्थात् जो इस निष्काम कर्म के मार्ग पर चलते हैं वे दृढ़ निश्चयी होते हैं, लक्ष्य भी एक होता है. उसकी बुद्धि व्यवसायात्मिका (एक प्रकार की) की होती है और जो दृढ़ निश्चयी नहीं है उनकी बुद्धि अनेक शाखाओं में विभक्त रहती है।

"जो दृढ़ श्रद्धा से युक्त कृष्ण भावनामृत द्वारा मनुष्य जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करेगा उसकी बुद्धि व्यवसायात्मिका बुद्धि कहलाती है।"[15]

योगस्थः कुरु कर्माणि संगम त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

अर्थात् योग में स्थित होकर, समस्त आसक्ति का त्याग करते हुए सिद्धि और असिद्धि में समभाव से अपना कर्म करो। ऐसी समता योग कहलाती है। समता परमात्मा का स्वरूप है।[16]

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः

अर्थात् जिसका मन समता में स्थित हो गया है, उन लोगों ने जीवित अवस्था में ही संसार को जीत लिया है।[17]

योगस्थः सन् कुरु कर्माणि केवलमीश्वरार्थ
तत्रापीश्वरो मे तुष्यत्विति सङ्ग त्यक्त्वा धनञ्जय।
फलतृष्णाशून्येन क्रियमाणे कर्माणि सत्त्वशुद्धिजा
ज्ञानप्राप्तिलक्षणा सिद्धिस्तद् विपर्ययजा असिद्धिस्तयोः
सिद्धयसिद्धयोरपि समस्तुल्यो भूत्वा कुरु कर्माणि।
कोऽसौ योगो यत्रस्थः कुर्वित्युक्तमिदमेव तत्
सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

अर्थात् हे धनंजय ! योग में स्थित होकर केवल ईश्वर के लिये कर्म कर। उसमें भी ईश्वर मेरे पर प्रसन्न हो जाय इस संग (कामना) को छोड़कर कर्म कर। फलतृष्णारहित पुरुष के द्वारा कर्म किये जाने पर अन्तःकरण की शुद्धि से उत्पन्न होने वाली ज्ञान प्राप्ति तो सिद्धि है और उससे विपरीत ज्ञान प्राप्ति न होना असिद्धि है। ऐसी सिद्धि असिद्धि में सम होकर अर्थात् दोनों को तुल्य समझकर कर्म कर। वह कौन सा योग है, जिसमें स्थित होकर कर्म करने के लिये कहा है यही जो सिद्धि और

असिद्धि में सम होना है, इसी को योग कहते हैं।[18]

बुद्धियुक्तो जहातीह उमे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

अर्थात् बुद्धि युक्त। समता से युक्त पुरुष जीवित अवस्था में ही पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर कर्मों को करता है, इस प्रकार कर्मों की कुशलता ही योग है।

'योगः कर्मसु कौशलम् दो अर्थों में लिये जा सकते हैं –

1. 'कर्मसु कौशलं योगः अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है।
2. कर्मसु योगः कौशलम् अर्थात् कर्मों में योग ही कुशलता है।[19]

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

अर्थात् निष्कामी मनुष्य राग द्वेष से मुक्त होकर अपने इन्द्रियों को वश में करके विषयों का सेवन करता है, ऐसा करने से साधक के अन्तःकरण निर्मल होते जाते हैं, साधक के सम्पूर्ण दुःखों का नाश हो जाता है ऐसे शुद्ध चित्तवाले साधक जल्द ही अपने बुद्धि को परमात्मा में स्थिर कर लेता है।[20]

उपर्युक्त श्रीमद्भगवतगीता में वर्णित निष्काम कर्मयोग के स्वरूप, लक्षण आदि को मनुष्य अपने जीवन में धारण करे तो निश्चित रूप मनुष्य को कर्म फलों के त्याग के कारण तात्कालिक शांति प्राप्त हो सकता है। कर्मणा बध्यते जन्तुः अर्थात् कर्मों से मनुष्य बंध जाता है। इसलिए मनुष्य को निष्कामी होकर कर्मों को करना चाहिए ऐसा करने से मस्तिष्क पर पड़ने वाले कर्मों के परिणाम के कारण उत्पन्न अतिभार / तनाव से राहत प्राप्त होती है। अतः निष्काम कर्मयोग की राह पर चलकर मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का संवर्धन किया जा सकता है।[21]

निष्कर्ष: शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा जब संयुक्त रूप से उचित ढंग से कार्य करते हैं तो व्यक्ति सभी स्तरों पर स्वस्थ रहता है और इन चारों का संयुक्त रूप से कार्य करने में निष्काम कर्म योग और आहार का मार्ग अति सरल और सहज साधन है। आहार का हमारे स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सही आहार न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखता है, बल्कि यह मानसिक संतुलन और रोग प्रतिकारक क्षमता को भी बढ़ाता है। आयुर्वेद के अनुसार, आहार का चयन करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह शरीर के दोषों, मौसम, और व्यक्ति की आयु और मानसिक स्थिति के अनुसार उपयुक्त हो। स्वस्थ आहार से ही हम रोगों से बचते हैं और जीवन में समग्र स्वास्थ्य प्राप्त कर पाते हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. Charaka Samhita, Sutra Sthana, 30.26, (Charaka, ca. 300 BCE)
2. "समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः, प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थइत्यभिधीयते"
3. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, श्लोक 1.1
4. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, श्लोक 1.4

5. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, श्लोक 15.40
6. श्रीमद्भग्वद्गीता 6.17
7. श्रीमद्भग्वद्गीता 17.7
8. श्रीमद्भग्वद्गीता 17.8
9. श्रीमद्भग्वद्गीता 17.9
10. श्रीमद्भग्वद्गीता 17.10
11. Mishra, Pradip Kumar & Pandey, Kuldeep. (2024). The Concept of Vyadhikshamatva (Immunity) with Special Reference to Enhancement of Quality of Life through Yogic Practices and Herbal Immunomodulators in Cancer Patient... Volume- 22. 143-153.
12. श्रीमद्भग्वद्गीता 2.47
13. श्रीमद्भग्वद्गीता 2.38
14. श्रीमद्भग्वद्गीता 2.39
15. श्रीमद्भग्वद्गीता 2.40
16. श्रीमद्भग्वद्गीता 2.41
17. श्रीमद्भग्वद्गीता 2.48
18. श्रीमद्भग्वद्गीता 5.19
19. शंकर भाष्य गीता 2.47
20. श्रीमद्भग्वद्गीता गीता 2.50
21. श्रीमद्भग्वद्गीता 2.64
22. श्रीमद्भग्वद्गीता 2.65

❐